गुरु सेवा की मुख्य भूमिका

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

गुरुसेवा एक प्रकार की महान साधना है। सुदीर्घ समय की निष्ठा, भक्ति और एकाग्र सेवा साधना के माध्यम से ही शिष्य क्रमशः गुरुसेवा का उच्च अधिकार लाभ करता है। एक तरफ गुरुवाक्य में, गुरु के कर्म में अविचल निष्ठा व भक्ति और दूसरी तरफ धैर्य, स्थैर्य एवं एकान्त साधना–इस प्रकार मानदण्ड की समता एवं सुसामन्जस्य अवस्था की नींव में गुरुगत प्राण शिष्य 'सेवक' के रूप में गुरुसेवा का अखण्ड अधिकार प्राप्त करता है। प्रकृतपक्ष में एकनिष्ठ गुरुसेवा ही प्रकृत गुरुपूजा होती है। गुरुसेवा के माध्यम से साधक भक्तियोग स्थित दास्य भाव की साधना के स्तर पर उपनीत होने में सक्षम होते हैं। गुरुदास न होने से गुरु का सद्‌गुण प्राप्त नहीं किया जा सकता एवं गुरु भी अपनी शक्ति शिष्य के मध्य आरोपित नहीं कर सकते।

"मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं" होने पर, तभी सब होता है। अधिकांश क्षेत्रों में तो "मंत्रमूलं निजवाक्यं" है–इससे और क्या हो सकता है? गुरु भी हताश हो पड़ते हैं।

जो सद्‌गुरु लाभ करता है उसका सद्‌गुरु संग ही प्रकृत सत्संग रूप परमधर्म है। कारण सत्संग और सद्‌गुरु की कृपा से मनुष्य निदारूण कर्मफलरूपी प्रारब्ध को अतिक्रम करने में सक्षम होते हैं। पाप या पुण्य, ये दोनों प्रकार के कर्मक्षय न होने पर्यन्त भगवत् सत्ता के संग युक्त नहीं हुआ जा सकता। जो मन में सोचता है कि सद्‌गुरूसंग परित्याग कर धर्मपथ पर रहेगा, उसका अधर्म ही अधिक साधित होता है; कारण, वह स्वार्थी है। निःस्वार्थभाव में उनका और कोई भी कर्म प्रवृत्ति मार्ग में नहीं हो पाता। निःस्वार्थ नहीं हो पाने से सद्‌गुरु-चरण में समर्पित चित्त नहीं हो सकता और सद्‌गुरू में समर्पण भाव न रहने से कुछ भी होने का नहीं है। कामना-वासना प्रवृत्ति मार्ग में और निष्कामता निवृत्ति मार्ग में रहती है। निष्काम न हो सकने से प्रकृत आनन्द की उपलब्धि नहीं होती। सद्‌गुरूसंग में गंगास्नान एवं स्वार्थ के संसार में माया-सरोवर में पंक मध्य निमज्जित हो कर रहना पड़ता है–सत्धर्म कहाँ?

सद्‌गुरु प्रदत्त ब्रह्मविद्यालाभ या ब्राह्मीदीक्षा प्राप्ति धर्मपथ का प्रथम पदक्षेप है। वेद-वेदान्त, शास्त्र-स्मृति, गीता इत्यादि शास्त्रानुसार ब्रह्मविद्यारूपी आत्मज्ञान की साधना में मूलतः सात प्रकार पर्याय हैं। यथा–शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्तापत्ति, असंसक्ति, पदार्थभावनी एवं तुर्यागा। सत्-असत् विचार के फलस्वरूप मनुष्य हृदय में ऐसी धारणा होती है कि इहकाल व परकाल की समस्त वस्तु ही अनित्य है। इस अवस्था में गुरुमुख होकर शमदमादि अभ्यास करने से साधक का चित्त बहुत हद तक शुद्ध हो जाता है एवं साधक समझ सकता है कि जागतिक संसार से मुक्तिलाभ ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। तब सारे दुःखों के अवसान हेतु परमानन्द सम्भोग के व्याकुल आग्रह से साधक के प्राण में मोक्षलाभ करने की इच्छा जाग उठती है। तभी लाभ होती है ज्ञान की प्रथम भूमि ''शुभेच्छा''। यह प्राप्त होकर ज्ञान-भिक्षु साधक सद्‌गुरू की शरण लेते हैं एवं गुरूनिर्देशित योगविद्या लाभ कर यम, नियमादि वहिरंग साधन करते हुए साधक की देह, इन्द्रिय, मन व बुद्धि शुद्ध हो जाती है। तभी वह अभ्यास करता है सदाचार, उपासना, सद्‌गुरूसेवा, वैराग्य एवं अध्यात्म ज्ञान निष्ठा–यह बोध विकास के ज्ञान-साधना का द्वितीय सोपान ''विचारणा'' है। इस विषय में यही कहा जा सकता है कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि–ये 'अष्टांग योग' है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, कृपा, अकपटता, क्षमा, धैर्य, मिताहार एवं शौचाचार –ये दस विषयादि 'यम' हैं। तपस्या, संतोष, आस्तिक्य, दान, देवपूजा, सिद्धांतश्रवण, पाप कर्म में लज्जाबोध मति, जप और यज्ञ–ये दस विषयादि 'नियम' हैं। आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार–ये तीन 'वहिरंग साधन' हैं। धारणा, ध्यान व समाधि–ये तीन 'अंतरंग साधन' हैं। निःसंशय चित्त से अंतरंग साधना के द्वारा चित्तचांचल्य, राग-द्वेष और अशुभ संस्कार दूर हो जाते हैं। तब साधक-

आधार में अतिन्द्रिय वस्तु के साक्षात्कार लाभ की योग्यता देखी जाती है। यही तृतीय स्तर 'तनुमानसा' है। इसके बाद कठोर अंतरंग साधन से समाधि अवस्था में ध्येय वस्तु परमब्रह्म का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है। तब अनुभूत होता है कि जगत् अनित्य, प्रकृत सत्य का प्रतिरूप मात्र है, ब्रह्म व आत्मा एक एवं अद्वितीय सत्य है – परम सत्य है – ध्रुवपद है – यह ही चतुर्थ सोपान 'सत्तापति' है। इस अवस्था में साधक-योगी पद पर आसीन हो कर इहलोक बन्धन एवं जन्म-मृत्यु की अतीतावस्था लाभ करता है। आत्मदर्शन से योगी त्रिकालज्ञ हो जाते हैं। परन्तु ध्यानावस्था में जो ब्रह्मानन्द का आस्वादन होता है, व्युत्थान अवस्था में योगी उस आनन्द से वंचित होता है। पूर्णसिद्ध व आप्तकाम होने के लिए एवं परमानन्द लाभार्थ समाधि परिपक्वता प्राप्ति के लिए योगी को निरंतर अंतरंग साधना का प्रयोजन होता है। सुदीर्घकाल के तीव्र अभ्यास योग-साधन के फलस्वरूप साधक पर्याय क्रम में उपनीत होते हैं पंचम से सप्तम स्तर पर। तभी प्रज्ञानलोक से आनन्दबोध की चरम अवस्था में उपनीत हो कर योगी का वीर्य एवं ऐश्वर्य परिणत होता है अनुपम माधुर्य में; तब समाधि जागृत अवस्था में साधक के अन्तर-बाहर सर्वदा ही सच्चिदानंदमय रहता है। योगी के साधन जीवन में तब भी चरम व परम सार्थकता लाभ नहीं होती। इस कारण ज्ञान और योग के सहित भक्ति व प्रेम के पूर्णतया समन्वय व साधन की जरुरत है। एकमात्र सद्गुरु की असीम कृपा एवं आशीर्वाद से भक्तहृदय में सुदुर्लभ भक्तिलता का बीज अंकुरित होता है। भक्ति के पथ पर शुद्धाभक्त प्रेमराज्य में प्रविष्ट होता है एवं भगवत्लीला रसामृत का रसपान करता है। पराभक्ति व प्रेम लाभ से ही नित्यशुद्ध बुद्ध भक्त के साधन-जीवन में महासिद्धि सूचित होती है; लाभ होता है श्रीकृष्ण पुरूषोत्तम का सान्निध्य एवं मानव जीवन की चरम व परम सार्थकता। अतएव, सद्गुरू गोविन्द के ध्यान और आराधना, सेवा व परिचर्या में अपने को निवेदन न कर सकने से पूर्णतम् महिमामय धर्मराज्य का अधिकार प्राप्त किया नहीं जा सकता।

–हिन्दी अनुवाद: मातृचरणाश्रित श्रीविमलानंद

नित्यसिद्ध महात्मा के दिव्यदर्शन में–श्री रामकृष्ण लीला

श्रीविष्णुपद सिद्धान्त ठाकुर

(३)

श्री रामकृष्णदेव एकदिन कमरे का दरवाजा बन्द कर भवतारिणी माँ को प्रश्न करते हैं–"अच्छा माँ! ये लोग जो मेरे पास आते हैं, ये भी तो तुम्हारी ही सन्तान हैं! तब मेरे साथ जैसे बातें करती हो, मेरी सब बातों का उत्तर देती हो वैसे ही इन्हें तुम दिखाई क्यों नहीं देती हो? इनके प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं देती हो? इसके लिए तो ये लोग तुम्हें ही दोष देंगे ना! तुम इनके सामने तो सज्जित गुड़िया की तरह रहती हो, परन्तु मेरे साथ मनुष्यों की भाँति बातें करती हो, यह तुम्हारा कैसा न्याय है माँ?"

भावाविष्ट श्रीविष्णुपद सिद्धान्त ठाकुर

माँ भवतारिणी ने उत्तर दिया, "मैं इनके साथ भी बातें करती हूँ, इन्हें दर्शन देती हूँ, परन्तु न तो ये मेरी बात सुन सकते हैं और न ही मुझे देख पाते हैं। ये बहरे बने रहते हैं, इसीलिए काली माँ की बात नहीं सुन पाते। किसी पढ़ाकू बच्चे के कान के पास ढाक बजने पर भी जैसे वह सुन नहीं पाता है वैसे ही ये भी विषय वासना के आकर्षण में इतने तन्मय रहते हैं कि ये मेरी बात नहीं सुन पाते। इनके भी कान के पर्दों से जब विषय वासना रुपी मैल हट जायेगा तब ये भी तुम्हारी ही भाँति मेरी बाते सुन पायेंगे। इसलिए तुम्हारे निमित्त ही मैं इन्हें दिखाऊँगी कि मैं सभी के साथ बातें करती हूँ और सभी से साक्षात् भी करती हूँ।"

यह सुनकर रामकृष्णदेव बोले, "मैं इनसे कहता हूँ कि मैं माँ के साथ बातें करता हूँ, परन्तु नरेन के अलावा कोई भी मेरी बात का विश्वास नहीं करता हैं; इसलिए नरेन को तो तुम दर्शन दे सकती हो ना! उसे जब थोड़ा विश्वास हुआ है तब उसे दर्शन देने में क्या क्षति है?"

माँ भवतारिणी–"नरेन तुम्हारे दरवाजे की चौखट पर बैठा है। सारी रात उसने तुम्हारे स्वरुप का ही दर्शन किया है इसीलिए भोर होते ही तुम्हारे दर्शनों के लिए तत्परता से पैदल दौड़ा चला आया है। दरवाजा खोलकर उसे भीतर